भारत में बेरोजगारी : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ0 अनिल कुमार मिश्र*

सारांश

आज विकास की अवधारणा बदल गयी है, अब विकास मात्र आर्थिक विकास का पर्याय न होकर सामाजिक विकास का द्योतक हो गया है। सामाजिक और आर्थिक स्तर पर एक साथ सन्तुलित विकास को सामाजिक विकास कहते है। सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण पहलू मानव संसाधन का विकास है। मानव विकास के अन्तर्गत बेरोजगारी निवारण एक महत्वपूर्ण तथ्य है। एक बेरोजगार अभाव का जीवन जीता है व निरन्तर गरीबी में जीवन–यापन करता है। ऐसी स्थिति में उसके लिए जीवन की गुणत्ता का प्रश्न बेमानी सिद्ध होता है। वह न केवल रोटी, कपड़ा और मकान की प्राथमिक व अनिवार्य आवश्यकताओं को ही पूरा करने में विफल रहता है अपितु स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा के कार्यक्रमों का भी उसे लाभ नही मिल पाता है।

भारत में बेरोजगारी एक मूल समस्या है। 65 वर्षो के दीर्घकालीक नियोजन के बावजूद यह देश में व्यापक रूप से फैली हुई है। ग्रामीण हो या शहरी, शिक्षित हो या अशिक्षित आज सभी बेरोजगारी की समस्या से ग्रस्त है। बेरोजगारी के कारण मानव शक्ति अप्रयुक्त रह जाती है जिसका देश के उत्पादन, मानव पूंजी निर्माण, व्यापार, व्यवसाय और आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बेरोजगारी केवल आर्थिक विपन्नता को ही जन्म नही देती अपितु यह आतंकवाद, नक्सलवाद, अपराधों में बृद्धि, सामाजिक विघटन व सामाजिक दबाव समूहों के अनावश्यक मांगों के रूप मे प्रगट होती है। यह अन्याय रूपों मे देश के विकास में बाधा उत्पन्न करती है व एकता–अखण्डता को कमजोर करती है।

बेरोजगारी की अवधारणा –

एक बेरोजगार व्यक्ति ''वह है जिसमें कमाने की अन्तर्निहित क्षमता व इच्छा दोनों है फिर भी उसे वैतनिक काम नही मिल पाता'' समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से बेरोजगारी की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि ''यह सामान्य कार्यरत बल के एक सदस्य (यानी 15–60 आयु वर्ग का) को सामान्य कार्य काल (Working time) में सामान्य वेतन पर और उसकी इच्छा के विरूद्ध वैतनिक कार्य से अलग रखना है।'' डी. मैलो ने परिभाषा देते हुए कहा है कि ''यह वह प्रस्थिति है जिसमें एक व्यक्ति इच्छा के बावजूद वैतनिक व्यवसाय की स्थिति में नही है।'' भारत के याजना आयोग ने उस व्यक्ति को 'बेरोजगार' कहा है जो एक सप्ताह में एक दिन बगैर काम के रहता है। इसके विपरित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने उस व्यक्ति को कार्यरत माना है जिसके पास एक सप्ताह (पांच दिन का) में 15 घंटे (लगभग दो दिन) काम होता है। यह परिभाषा एक विकसित देश मे जो बेरोजगारी को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है, मानी जा सकती है, परन्तु यह भारत जैसे विकासशील देशों मे नही मानी जा सकती जहाँ कोई बेरोजगारी बीमा नही है। योजना आयोग द्वारा नियुक्त बेरोजगारी के अनुमान तैयार करने के लिए विशेषज्ञों की समिति की सिफारिसों के आधार पर राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 27वें रौद में बेरोजगारी के तीन अनुमान तैयार किए गए है।

1. चिरकालिक बेरोजगारी– बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या के रूप में मापी जाती है। अर्थात ऐसे व्यक्ति जो पूरे वर्ष के दौरान बेरोजगार ही हों यह प्रमाप उन व्यक्तियों के लिए अधिक महत्व रखता है जो नियमित रोजगार की तलाश में रहते है (उदाहरणार्थ– शिक्षित एवं कुशल व्यक्ति)। वे लोग आकस्मिक काम स्वीकार नही करते। इसी कारण इस बेरोजगारी को खुली बेरोजगारी भी कहा जाता है।

2. साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी– यह भी व्यक्तियों की संख्या के रूप में मापी जाती है अर्थात् ऐसे व्यक्ति जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान एक घंटे का भी रोजगार नही मिला।

3. दैनिक स्थिति बेरोजगारी– इसे व्यक्ति–दिनों या व्यक्ति–वर्षों के रूप में मापा जाता है अर्थात वे व्यक्ति जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान एक दिन या कुछ दिन रोजगार प्राप्त न हुआ हो।

* एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी0ए0वी0 कालेज, कानपुर

भारत में बेरोजगारी के कारण–

ऐसी आशा की जाती है कि आर्थिक संवृद्धि से रोजगार अवसरों का विस्तार होगा। परन्तु भारत में योजना अवधि के दौरान अधिकतर समय में संवृद्धि, रोजगार के पर्याप्त अवसर पैदा करने में असमर्थ रही है। 1950–51 से 1980–81 के दौरान पहले तीन दशकों मे सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर मात्र 3.5 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। इस कम आर्थिक संवृद्धि दर के परिणाम स्वरूप ज्यादा रोजगार अवसर पैदा नहीं किए जा सके। 1980–81 से 2007–08 की अवधि में आर्थिक संवृद्धि दर बढ़कर 5–7 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई। (1991–92 से 2007–08 के बीच तो आर्थिक संवृद्धि की दर 6.3 प्रतिशत प्रति वर्ष के स्तर को छू गई) आर्थिक संवृद्धि की इस उच्च दर पर आशा करना स्वाभाविक है कि नये रोजगार अवसर पैदा होगें। परन्तु ऐसा नहीं हो पाया। इसका कारण यह था कि पिछले दो दशकों में लगभग सभी प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों के राजगार लोच में तेज गिरावट हुई है विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार लोच पिछले दो दशकों मे 0.59 से कम होकर 0.33 रह गयी है। सभी क्षेत्रों पर एक साथ विचार करें तो रोजगार लोच जो 1983 से 1987–88 के बीच 0.68 थी, वह 1993–94 से 1999–2000 के बीच कम होकर मात्र 0.16 रह गई। स्पष्ट है कि इन हालातों में बेरोजगारी कम नहीं हो सकती। 2000–01 से उदारवादी नीतियों के तहत कुशलता पर और अधिक जोर दिया जा रहा है। इसलिए श्रम विस्थापन तकनीकों का प्रयेाग बढ़ रहा है। इसलिए आर्थिक संवृद्धि 'रोजगार विहीन' रही है।

बेरोजगारी मे तीव्र गति से वृद्धि का मुख्य एवं महत्वपूर्ण कारण बढ़ती हुई जनसंख्या भी है। जो वर्तमान में 1.64 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ रही है जबकि रोजगार की सुविधाएं उस दर से नहीं बढ़ रही है। 1951 में देश की जनसंख्या 36.11 करोड़ थी। 2011 में वह बढ़कर 121.02 करोड़ हो गयी। 1991–2001 की अवधि में जनसंख्या में 18.23 करोड़ की बृद्धि हो गई। इस तरह इस दशक में देश की जनसंख्या 21.54 प्रतिशत बढ़ गई। विगत् दशक 2001–2011 की अवधि में जनसंख्या में 18.15 करोड़ की वृद्धि हुई। इस तरह इस दशक में देश की जनसंख्या 17.64 प्रतिशत बढ़ गई।

अन्य देशों की तुलना में भारत में श्रम का बहुतायत है लेकिन हमारी आर्थिक नीतियां पश्चिमवादी विचारधारा से प्रभावित है। हमारे यहां आर्थिक विकास के लिए श्रम प्रधान प्रौद्योगिकी के स्थान पर मशीनीकृत प्रणाली को अधिक से अधिक स्थान दिया जा रहा है जिसके कारण तीव्र आर्थिक संवृद्धि के बावजूद रोजगार सृजन कम हो रहा है। भारत में रोजगार सृजन के संबंध में गांधीवादी नीतियों की समीक्षा जरूरी है। विकास का गांधीवादी स्वरूप कुटीर और लघु उद्योगो के पक्ष में है। उनका विश्वास था कि कारखाना पद्धति मशीनरी का विस्तृत प्रयोग करके, कुछ पूंजीपतियों द्वारा श्रम के शोषण का साधन है। हस्तशिल्पों और कुटीर उद्योगों पर बल देने का उद्देश्य उत्पादन के साथ–साथ रोजगार का विस्तार करना है। उनके अनुसार बड़े उद्योगों और मशीनरी उत्पादन से समाज में शोषण बढ़ता हैं तथा बेरोजगारी फैलता है। इसलिए उन्होंने कुटीर उद्योगों को विकास का मूल मंत्र माना।

बेरोजगारी दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली का भी परिणाम है। यह शिक्षा प्रणाली, अंग्रेजों ने अपनी बढ़ती नौकरशाही के लिए बाबूओं को प्रशिक्षित करने के लिए चलाई थी। गुन्नार मिर्डल के अनुसार, भारतीय शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य मानव स्रोतो को विकसित करना नही रहा है। यहां की शिक्षा प्रणाली सरकार और व्यवसायिक प्रतिष्ठानों के लिए क्लर्क और निचले दर्जे के प्रशासनिक अफसर पैदा कर सकती है। इस प्रकार की शिक्षा देने वाली संस्थाओं के विस्तार से बेरोजगारी बढ़ना जरूरी था। इतिहास, दर्शन व हिन्दी आदि के अध्ययन करके सभी लोग रोजगार नहीं पा सकते। मिर्डल के अनुसार, ये लोग न केवल अल्पशिक्षित है बल्कि सच पूछा जाये तो इनकी शिक्षा गलत प्रकार की है अभिप्राय यह है कि यदि भारत में शिक्षित लोगों की बेराजगारी कम करनी है तो उसके लिए शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने होगें। जो शिक्षा मानव स्रोतों का विकास नहीं करती वह लोगों को व्यापक स्तर पर रोजगार नहीं दिला सकती।

बेरोजगारी के लिए आर्थिक कारकों के साथ सामाजिक और वैयक्तिक कारक भी उत्तरदायी है। समाजशास्त्रीय शब्दों में बेरोजगारी को अनेक सामाजिक कारकों जैसे अपमानजनक सामाजिक प्रस्थिति, भौगोलिक गतिहीनता, जनसंख्या का तीव्र विकास और वैयक्तिक कारक जैसे अनुभवहीनता, व्यावसायिक अयोग्यता, बीमारी तथा असमर्थता के सम्मिश्रण की उपज कहा जा सकता हैं।

रोजगार एवं बेरोजगारी की तस्वीर

लाख व्यक्ति वर्ष

	अखिल भारत	1983	1993–94	1999	2004–05	2009–10	2011–12
1	जनसंख्या	7182.0	8940.1	10039.7	10928.3	11741	12274
2	श्रमशक्ति	2613.3	3359.7	3633.3	4196.5	4289	4404
3	कार्यरत् श्रमशक्ति	2395.7	3158.4	3367.5	3849.1	4008	4157
4	बेरोजगार की संख्या (2–3)	217.6	201.3	265.8	347.4	281	247
5	बेरोजगारी दर	8.33	5.99	7.32	8.23	6.6	5.6

स्रोतः योजना आयोग 2002, 100 लाख रोजगार प्रति वर्ष लक्ष्य के बारे में विशेष दल की रिपोर्ट, NSSSO 66th Round

रोजगार–बृद्धि प्रोत्साहित करने के लिए विकल्प विकास मॉडल

भारत में बेरोजगारी शुरू से ही योजनाकारों के लिये चिन्ता का विषय है। 1952 में सामुदायिक विकास येाजना के माध्यम से गरीबी व बेरोजगारी मिटाने के प्रयत्न शुरू हो गये। उसके बाद अनेक योजनाएं क्रियान्वित गयी जिनमें समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, दस लाख कुओं की येाजना, इंदिरा आवास योजना, रोजगार आश्वासन योजना, जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना, संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना आदि महत्वपूर्ण योजनाएं है।

1993–94 से 1999–2000 के बीच ग्रामीण रोजगार में 0.58 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई जबकि ग्रामीण श्रम शक्ति में वृद्धि इससे बहुत ज्यादा थी। ग्रामीण क्षेत्रों में लाभकारी रोजगार अवसर न होने के कारण बहुत से ग्रामीण परिवारों की आय में तेज गिरावट हुई है। बिगड़ती आर्थिक स्थिति से मजबूर होकर कई किसानों ने आत्महत्या की हैं। इस मानव त्रासदी को स्वीकार करते हुए यू.पी.ए. सरकार ने राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के परामर्श पर लोक सभा में राष्ट्रीय ग्राम रोजगार गारंटी कानून पास किया। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी नियम किसी एक वित्तिय वर्ष में प्रत्येक ऐसे ग्रामीण परिवार के एक व्यस्क सदस्य को कम से कम 100 दिन रोजगार की गारंटी प्रदान करता है जो अकुशल शारीरिक श्रम के लिए तैयार है। अधिकार–ढाँचे के कारण तथा मांग प्रेरित दृष्टिकोण के कारण NREGA पिछले मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों से नितान्त भिन्न है–समयबद्ध रोजगार गारण्टी तथा 15 दिनों में मजदूरी भुगतान, राज्य सरकारों को रोजगार के लिए प्रोत्साहन तथा श्रम–प्रधान कार्यक्रमों को लागू करना। NREGA के अन्तर्गत मजदूरी का भुगतान बैंको या पोस्ट आफिस खातों के माध्यम से करना अनिवार्य है। इससे गरीबों के वित्तीय अन्तर्वेशन में मदद मिलेगी।

अब नीति–निर्माता सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि के साथ रोजगार प्रोत्साहन पर जोर दे रहे है। इसके लिए कृषि विकास सर्वोच्च प्राथमिकता पर है। सिंचाई का विस्तार और वाटरशेड विकास कृषि–उत्पादिता को बढ़ाने और इसके साथ–साथ रोजगार बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते है। इसके अतिरिक्त पतित और व्यर्थ भूमियों के विकास के लिए पंचायतों का इस्तेमाल करना लाभदायक होगा। इससे रोजगार जनन में सहायता मिलेगी और कृषि में अल्प रोजगार भी कम होगा। विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार–वृद्धि में मुख्य अंशदाता लघु–स्तर और औपचारिक क्षेत्र है जिसे प्रायः असंगठित क्षेत्र की संज्ञा दी जाती है। लघु–स्तर और अनौपचारिक क्षेत्र पर सरकार को विशेष सुविधाएं उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। गांव की आधारभूत संरचना का विकास जरूरी है। इसके लिए सड़कों के विस्तार, ग्राम–क्षेत्र को शहरी केन्द्रों के साथ जोड़ने, कच्ची सड़कों को पक्की सड़कों में तबदील करने और चार लेन वाले राजमार्गो के रूप में आधार संरचना कायम करने के लिए श्रम प्रधान प्रोजेक्ट को प्रोत्साहित करना जरूरी है। इससे अधिक रोजगार–जनन के साथ व्यापार और उद्योग को भी प्रोन्नत किया जा सकता है। सूचना तकनीकी क्षेत्र का रोजगार अवसरों के विस्तार की दृष्टि से उज्जवल भविष्य है।

वैसकाम–मैकिन्जे रिपोर्ट (1999) ने यह अनुमान किया है कि एक दशक में 110 लाख रोजगार कायम किए जा सकेंगें।

सरकार द्वारा समय–समय पर चलाये जा रही योजनाओं की कमियों को दूर करके मनरेगा की तरह अधिक से अधिक रोजगार वृद्धि की संभावनाओं पर कार्य करना चाहिए। विशेष रोजगार योजनाओं द्वारा प्रतिवर्ष 30–40 लाख नौकरियां कायम की जाती है। इन योजनाओं की सफलता के लिए आवश्यक है कि भ्रष्टाचार का उन्मूलन किया जाये।

सन्दर्भ :

1. आहूजा, राम, सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशन, जयपुर–2010
2. चंद्र, विपिन, मुखर्जी, मृदुला व मुखर्जी आदित्य, आजादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय–2015
3. दत्त, गौरव व महाजन अश्विनी, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0लि0, नई दिल्ली–2016
4. झा, सुबोध, भारतीय समाज, पीयुष बुक पब्लिकेशन, दिल्ली–2010
5. मामोरिया, चतुर्भुज व जैन एस.सी., भारतीय अर्थव्यवस्था, साहित्यभवन पब्लिकेशन, आगरा–2012
6. मेहता, बल्लभदास (संपा), गांधी जी का आर्थिक दृष्टिकोण म0प्र0 सूचना एंव जनसम्पर्क मंत्रालय–1997
7. मिश्र, एस.के. व पुरी वी.के., भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली–2009
8. सिंह, जे.पी., आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, पी.एच.आई लर्निंग दिल्ली–2016